रोगनिवारक के रूप में जीवाणु

नरेन्द्र देवांगन

मानव में जीवाणुओं के संक्रमण से होने वाले रोगों का उपचार एंटिबायोटिक्स के उपयोग पर निर्भर हैं। 1940 से पहले तक एंटिबायोटिक्स की पर्याप्त मात्रा में दवाई के रूप में उपलब्ध न होने से इन रोगों से बहुत बड़ी संख्या में जन-जीवन की हानि हो जाया करती थी। प्लेग से गांव के गांव उजड़ जाते थे। कुछ दशक पहले तक मियादी बुखार के कारण भी बच्चों की बड़ी संख्या में मृत्यु हो जाती थी। प्रायः प्रत्येक गांव में अनेक लोग तपेदिक और कुष्ठ रोग से ग्रस्त रहा करते थे। हैज़े का रोग तो महामारी का रूप धारण कर लिया करता था और गांवों व शहरों में हज़ारों लोग अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे।

पर अब स्थिति कुछ और है क्योंकि एंटिबायोटिक कई प्रकार के संक्रामक रोगों के उपचार के लिए जीवन रक्षक सिद्ध हुए हैं। कहा जा सकता है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में मानव ने जीवाणुओं के कारण होने वाले रोगों पर विजय प्राप्त कर ली थी। परंतु कुछ वर्षों से कई जीवाणु जनित रोग, जो विलुप्त हो गए थे, फिर से लौट आए हैं, क्योंकि रोगकारक जीवाणुओं में एंटिबायोटिक्स को सहन करने की क्षमता पैदा हो गई है। विश्व में तपेदिक के रोगियों की संख्या पिछले कुछ दशकों की अपेक्षा 10 से 100 गुना बढ़ गई है। विकासशील देशों में जीवाणु जनित रोगों की रोकथाम और इलाज बहुत खर्चीला हो गया है। यदि किसी व्यक्ति को दस्त लग जाएं या गला खराब हो जाए तो उपचार हेतु एक सप्ताह में ही 100 से 150 रुपए खर्च करने पड़ते हैं। यदि कोई तपेदिक या कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो, तो न केवल इलाज होने में समय लगता है बल्कि हज़ारों रुपए दवाई वगैरह पर खर्च करने पड़ते हैं। कम आय वाले लोगों में ये रोग अधिक होते हैं। इस प्रकार मानव फिर से जीवाणु जनित रोगों के चंगुल में आ रहा है।

संक्रामक रोगों के जीवाणुओं को निष्क्रिय करने के लिए नए एंटीबायोटिक्स व अन्य साधनों की आवश्यकता है। इस संदर्भ में वैज्ञानिकों के नए प्रयासों की सफलता पर ही रोगों से निपटना संभव होगा। प्रश्न उठता है कि जीवाणु जनित रोगों की रोकथाम तथा इलाज के लिए क्या नए प्रकार के सस्ते उपचार संभव होंगे? वैज्ञानिकों के विभिन्न नए प्रयोगों से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उनसे लगता है कि भविष्य में शायद न्यूनतम लागत की दवाइयों से जीवाणुजनित रोगों का उपचार संभव हो पाएगा।

लागत में सस्ते इन उपचारों का मूल सिद्धांत यह है कि एक रोगकारक जीवाणु का उन्मूलन करने के लिए किसी दूसरे जीवाणु (प्रतिजीवाणु) का प्रयोग किया जाए। वस्तुतः यह सिद्धांत कोई नया नहीं है। इस शताब्दी के प्रारंभ में ही यह सिद्धांत स्थापित हो चुका था। जार्ज हर्सचेल तथा लाउंडन डगलस और उनसे पहले ऐली मैचनीकॉफ का यह विश्वास था कि यदि लोग अधिक मात्रा में मट्ठा या दही खाएं तो उनमें उपस्थित *लैक्टोबैसिलस* नामक जीवाणु आंत में पनपकर वहां दूसरे हानिकारक जीवाणुओं का दमन करेंगे और इस प्रकार स्वास्थ्य में सुधार होगा।

किन्हीं कारणों से परवर्ती काल में इस सिद्धांत पर अनुसंधान नहीं हुए और इस प्रकार इस सिद्धांत पर आधारित नई प्रकार की एंटिबायोटिक औषधियां प्राप्त करने तथा बनाने में देरी हो गई। परंतु हाल के प्रयोगों से विश्वास होता है कि निकट भविष्य में इस सिद्धांत का उपयोग नई औषधियां बनाने में होगा।

ऐसे कुछ प्रयोग कनाड़ा के ओटावा शहर में मुर्गियों पर किए गए हैं। पिछले कई वर्षों से ज्ञात है कि खाने में अंडों के उपयोग के कारण *साल्मोनेला* जीवाणु मानव के शरीर में प्रवेश कर रोग फैलाते हैं। मियादी बुखार *साल्मोनेला टायफॉइडिस* के संक्रमण से होता है। अंडों में *साल्मोनेला* जीवाणुओं का संक्रमण मुर्गियों से हो जाता है। वैज्ञानिकों ने

पाया है कि यदि चूज़ों को मुर्गियों के मल से प्राप्त कुछ जीवाणुओं का सम्मिश्रण खिलाया जाए तो वे *साल्मोनेला* जैसे हानिकारक जीवाणुओं से मुक्त रहते हैं। इस प्रकार ये चूज़े जब बड़े होकर मुर्गी बन जाते हैं तो उनके अंडों में रोगकारक जीवाणु नहीं रहते। इस प्रकार के अंडे खाने वालों में आंत के रोग नहीं फैलते। यह एक बहुत ही सरल तरीका है जिसके उपयोग से संक्रमित अंडों से फैलने वाले आंत के रोगों को फैलने से रोका जा सकेगा। इस सम्बंध में और अधिक अनुसंधान होने पर मानव शरीर में मियादी बुखार, खूनी पेचिश आदि रोगों को नियंत्रित किया जा सकेगा।

कुछ और प्रयोग अर्जेंटीना के चाकाबुको में चूहों और मानवों पर किए गए है। *शिगेला* आंत में रहने वाला एक जीवाणु है जिससे संक्रमित व्यक्ति में पेचिश हो जाती है। अर्जेंटीना में पेचिश रोग का मुख्य कारण शिगेला ही है। वहां वैज्ञानिकों ने मानव मल से कई प्रकार के जीवाणु अलग किए जो दूध में पनप सकते थे। इनमें से दो के नाम हैं *लैक्टोबेसिलस कैसयायी* और *लैक्टोबेसिलस ऐसिडोफिलस*। इनका शुद्धिकरण करके अलग-अलग दूध में मिलाकर दो प्रकार के दही बनाए गए। दोनों प्रकार के दहियों को मिलाकर कई चूहों को आठ दिन तक खिलाया गया। उसके बाद उन्हें *शिगेला* भी खिलाया गया। सभी दहीभक्षी चूहे स्वस्थ रहे जबकि जिन चूहों को दही नहीं खिलाया गया था उनमें से लगभग 40 प्रतिशत चूहे मर गए। इससे यह निष्कर्ष निकला कि इन प्रायोगिक जानवरों की आंतों में पेचिश पैदा करने वाला *शिगेला* जीवाणु पनप नहीं सका। गौरतलब है कि जब शरीर में *शिगेला* जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है तो वे लीवर व तिल्ली में जाकर उन्हें भी संक्रमित कर देते हैं। उपर्युक्त प्रयोगों में *शिगेला* जीवाणु उन चूहों के यकृत व तिल्ली में नहीं पहुंच पाए, जिन्हें उपरोक्त दही खिलाया गया था। दही भक्षी चूहों में *शिगेला* जीवाणु के प्रतिरोधक प्रोटीन्स की मात्रा में भी वृद्धि हुई थी। इस प्रकार प्रायोगिक चूहों के शरीर के लगभग सारे अंग *शिगेला* के संक्रमण से मुक्त रहे थे, जबकि नियंत्रित चूहे जिन्हें दही न देकर शिगेला जीवाणु दिया गया था, उनके विभिन्न अंग रोगग्रस्त हो गए थे।

अर्जेंटीना के वैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग इन्सानों पर भी किए हैं। जब उपर्युक्त प्रकार का उपचारित दही नवजात शिशुओं को दिया गया तो उन्हें दस्त नहीं लगे तथा पहले से लगे दस्त रुक गए। गौरतलब है कि नवजात शिशुओं में दस्त एक जानलेवा रोग है।

जीवाणुजनित रोगों के नियंत्रण के इस सिद्धांत का उपयोग अब मनुष्यों में विभिन्न रोगों के उपचार के लिए किया जाना चाहिए। रोग नियंत्रक दही औषधालयों में, घरों में आसानी से तैयार किया जा सकेगा। पेट व आंत के संक्रामक रोगों के अलावा शायद इसका उपयोग शरीर के अन्य अंगों से सम्बंधित रोगों के उपचार में भी संभव होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***